शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 जून 2013

स्त्री अस्मिता और दिलोदानिश : एक अध्ययन

सीमा खान (शोधार्थी)
मोहनलाल सुखडिया विश्वविद्यालय
उदयपुर राजस्थान

शोध संक्षेप

अस्मिता आत्म (स्वयं) के प्रति सचेतन भाव है। यह संस्कृत के शब्द 'अस्मि' से बना है, जिसका अर्थ है 'मैं हूँ । मेरी पहचान आदि। अस्मिता का बोध किसी भी व्यक्ति, जाति, देष राष्ट्र आदि के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी से उसमें स्वाभिमान और सामर्थ्य जैसे गुणों का विकास होता है और उसे सशक्त बनाता हैं। अस्मिता का भाव बहुत ही संवेदनषील है। यही कारण है कि वर्षों से हाषिये पर पड़े लोग एकदम केन्द्र में आ गए और अपनी पहचान को जिन्दा रखने के लिए संघर्ष करने लगे। साहित्य में स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श इसी भावबोध से परिचालित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रसिद्व लेखिका कृष्णा सोबती के स्त्री विमर्श संबंधी प्रमुख उपन्यास दिलोदानिश की पुन: पड़ताल की गयी है।

प्रस्तावना

स्त्री-विमर्श के संदर्भ में अस्मिता केन्द्रीय धुरी है जिसने हाशिये पर पड़ी स्त्री को बहस के केन्द्र में ला दिया। स्त्री-पुरूष में जैविक भेद तो प्रकृति प्रदान है लेकिन जेण्डर भेद के कारण उसकी अस्मिता संदिग्ध हो गयी। किसी भी व्यक्ति को एक सीमा तक ही दबाया जा सकता है, अवसर पाते ही वह अपनी पहचान के लिए संघर्ष कर उठता है, फिर स्त्री तो मानवी और बौद्धिक प्राणी है तो उसकी अस्मिता को कब तक दबाया जा सकता है ? वर्षो से सुषुप्तावस्था में पड़ा भाव जाग उठे और वह इतने प्रखर रूप में हमारे सामने आया कि दुनियाँ में स्वयं को स्थापित कर दिया। स्त्री-विमर्श के केन्द्र में स्त्री-अस्मिता इसी भीव से परिचालित है। पितृ सत्तात्मक व्यवस्था स्त्रियों को अपने अधीन रखने के लिए तमाम प्रकार की आचार संहिताओं का निर्माण करती है, वहीं स्त्री-अस्मिता उस व्यवस्था की जकड़ से बाहर निकलने, अपनी जगह तलाशने के लिए किए गए संघर्ष और प्रयास हैं।

दिलोदनिश और स्त्री विमर्श

आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री-चेतना के प्रखरतम लेखिका के रूप में कृष्णा सोबती की पहचान दर्ज है। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री-पुरूष के बदलते संबंध, स्त्री की मानसिक स्थिति और उसकी मुक्ति एवं स्त्री-अस्मिता को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। उनका उपन्यास 'दिलोदानिश' सामंती जीवन से संबंधित है, जिसमें स्त्री का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं बल्कि वह पुरूष की वासना को तृप्त करने वाली उपकरण मात्र है। सामंती जीवन में अपनी विवाहित पत्नी के अलावा अन्य स्त्री से संबंध होना कोई बुरी बात नहीं। समाज के सभी अधिकार पुरूषों के खाते में और दायित्व स्त्रियों के लिए बनाए गए। मर्यादा, धर्म, परंपरा, रीति-रिवाजों ने उन्हें इस कदर जकड़ दिया गया कि वे चाहकर भी उनसे मुक्त नहीं हो सकती थी।

इसी स्थिति को पूरी जीवंतता के साथ कृष्णा सोबती ने 'दिलोदानिश' में दिखाया है। वकील कृपानारायण का भरा-पूरा परिवार है, जिसमें पत्नी कुटुम्ब प्यारी, बच्चे, माँ और बहिन आदि सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त उनके संबंध एक तवायफ की बेटी महक बानो से भी हैं, और महक उनके दो बच्चों की माँ भी है। वकील साहब पूरी दानिशमंदी से महक के साथ अपने संबंध का निभाते है, लेकिन अंत में उसके साथ न्याय नहीं कर पाते और पुरुष सत्तात्मक रवैये से महक को एक कल-पुर्जे की तरह इस्तेमाल करके छोड़ देते हैं। वकील साहब इस कार्य को करने वाले पहले या अंतिम व्यक्ति नहीं बल्कि उनके बाबा-दादा ने भी यह किया था, फिर क्यों न इस परंपरा को आगे बढ़ाया जाए ? तभी तो जब कुटुम्ब प्यारी अपनी सास बउआ से इस अत्याचार की षिकायत करती है तो उसे सुनने को मिलता है- "इसे ढका ही रहने दो बहू जी। हाँ हमारी सीख इतनी ही कि यहीं न अटकी रही। कुछ बदलने वाला नहीं। जो हो रहा है उसे नजरदांज करो।"(1) दूसरी तरफ महक वकील साहब के प्रति पूरी तरह समर्पित और पूर्णतः बिछी-बिछी। दो संताने भी खुदा की सबसे बड़ी नेमतें-"दुनियाँ में दो ही नेमतें हैं साहिब, बेटा और बेटी। आपने हमें दोनों दिए।"(2) वकील साहब कभी-कभी अपनी करनी पर पछताते हैं और शर्मिन्दा होते हैं कि हमसे पूछो जानम तो हम तुम्हारे लायक ख़ास कुछ भी नहीं कर सके। यह बात महसूस करने की नहीं अपितु उस पर अमल करने की है, जिससे वकील साहब कोसों दूर हैं। कुटुम्ब को जब दूसरी औरत के बारे में पता चला तो उसका कलेजा फड़कने लगा, तन-बदन फुंकने लगा। तड़प कर कहा- "हमारा गला घोंट दीजिए।' वकील साहब अपनी गलतियों पर पर्दा डालते हुए सफाई देते हैं और अपनी पीने की आदत को भी जायज ठहराते हैं। साथ ही अपनी मर्दानगी के पीछे खानदान की इज्ज़त-आबरू को खाक में मिलाये रहते है। उनका अपना तर्क है- "लेकिन हो ही गया तो कुछ नया नहीं हुआ। हो जाता है तो मंजूर कर लिया जाता है।" वे पत्नी से अपेक्षा करते हैं कि उनके बाहरी संबंधांे को सहज रूप से स्वीकार कर ले। इस सोच के लिए दोषी सिर्फ वकील साहब नहीं अपितु वह परंपरा है जो उन्हें बाबा साहिब से मिली है। उन्होंने कुछ नया नहीं किया बल्कि उस परंपरा को अग्रेषित ही किया। वकील साहब महक के साथ न्याय नहीं कर पाते। जब-जब कोई बात उठती तो वह मूक दर्शक बने रहते। महक को बदरू के जन्म पर दिए गए कंगन को जब कुटुम्ब प्यारी लेने आयी तो कहते हैं -"बानो इन्हें कुछ वहम और बदगुमानी-सी हो गई है। कि हमने जाने आपको क्या कुछ दे डाला है। हम जानते हंै, हमने ऐसा नहीं किया। सो आप चाहें तो अपने गहनों की सन्दूकची दिखा डालिए।"(3) तभी महक उठी और गुल्लक जमा पूँजी थी। अपनी छोटी सी पिटारी ला समाने रख दी। कुटुम्ब खानदान का पुराना ज़ेवर होने के नाते कंगन को बाहर निकाल लेती है। महक की कितनी शालीन प्रतिक्रिया थी -"हम वकील साहिब से इतना तो पूछने से रहे कि हमें भी यह आप यह क्यों देने चले आए थे। हम तो माँगने न गए थे आपसे।"(4) वकील साहब की ज्यादिती का अहसास उनकी बेटी मासूमा को भी है-"वह बातों ही बातों में अम्मी का कंगन लूट ले गए है। बहुत बड़ा घर है अब्बू का। उन्होंने हम

लोगों को कुछ भी समझाा हुआ नहीं है। हवेली के मुकाबले यहाँ कुछ भी नहीं है उनके नौकरों के घर इससे बेहतर होंगे।"(5) कुटुम्ब के दिल की बात कोई नहीं समझना चाहता, वह कहे भी तो किससे ? सास, घर-कुल की मान-मर्यादा का हवाला देकर चुप रहने के लिए कहती। मर्द जो भी करें। खानदानों में सब मंजूरा ऊपर ऐसा रूआब और दबदबा कि ऐसा क्या कर डाला जो हमें न करना चाहिए था। इनके गुनाहों पर कौन खाक डालने वाला है। सब कुछ करेंगे लेकिन दूध के धुले बने रहेंगे। विद्रोह 'दिलो दानिश' के सभी पात्र करते हैं लेकिन तरीके उनके अलग-अलग हैं। छुन्ना विधवा होकर समाज की सडी-गली परंपराओं से विद्रोह करती है। वह सफेद साड़ी की जगह रंगीन साडियाँ पहनती है और हर वक्त स्वयं को गमग़ीन नहीं रहती अतितु ज़िन्दगी को उत्साह के साथ जीती है। उसकी इन आदतों से परिवार के सभी लोग परेषान हैं "हमारी मानिए साहिब तो छुन्ना बीबी को किसी आश्रम में भिजवा दीजिए। नहीं तो एक न एक दिन ऐसी जग हँसायी होगी खानदान की कि हम लोग राह में मुँह दिखाने को न रहेंगे।"(6) पत्नी कुटुम्ब प्यारी के प्रतिशोध का तरीका महक से अधिक स्थूल और भौडा है। वह भैरो बाबा की हम बिस्तर होकर और संभवता गर्भवती होकर वकील साहब से प्रतिषोध लेती है। यही प्रतिषोध महक और वकील साहब में दरार पैदा कर खायी बनाता है। वे कुटुम्ब की हरकत को जान जाते हैं पर कुल - मर्यादा की शान बनाए रखने के लिए बात को दबा दिया गया। दूसरे महक से लिए गए कंगन भी एक तरह का प्रतिशोध है। यहाँ एक बात महत्वपूर्ण है और बार-बार मन में अटकती है कि वकील साहब स्वयं तो पत्नी व प्रेमिका से एकनिष्ठ नहीं हैं, फिर किस अधिकार से ये उपेक्षा करते हैं कि दोनों उनके प्रति एकनिष्ठता का भाव रखें ? पत्नी के लिए कुल की मान-मर्यादा का दबाव सामने है इसलिए उनका बड़े से बड़ा अपराध भी क्षम्य है, यहाँ तक कि भैरो बाबा से संबंध भी क्षम्य हो गया। फिर महक बानो ने ऐसा कौन सा अपराध कर दिया जो कि उसे कल-पुर्जे की तरह एक तरफ फेंक दिया। वह एक तवायफ की बेटी, डेरदारों में पली-बड़ी लेकिन उसमें किसी भी खानदानी औरत से अधिक सलीका और गुण हैं। उपन्यास के आरंभ में ही मुंशी जी की टिप्पणी -" ऊपर वाले के रंग हैं। कहाँ हवेली वाली गुस्सायी रहती है और कहाँ ये सिदक का ऐसा पानी पिए है कि जो देखे सलीके पर कुर्बान हो जाए।"(7) इस सलीके का फायदा वकील साहब ने उम्र भर उठाया। उनकी दृष्टि में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो छोटे-मोटे गुनाह न करता हो-"कोई ऐसा नामुराद मर्द जो छोटे-मोटे गुनाह न करता हो ? साधु सन्यासी नहीं, इन्सान हैं हम।"(8) और हम क्या हैं? कुटुम्ब की नज़र में क्या सारी ज्यादतियाँ उसे ही झेलनी पड़ेगी ? इस मामले में वकील साहब की सोच पूर्णतः स्पष्ट है-" आपके लिए तो इतना ही कहा जा सकता है कि आप औरत हैं और आपको गृहस्थी बनाने- चलाने को ही ऊपर वाले ने बनाया है।"(9) पर नहीं कुटुम्ब इस बात से सहमत नहीं, क्या सारे झंझट-झमेले हमीं लोगों के हिस्से में आ गए। इतनी बेइंसाफी तो ऊपरवाला नहीं कर सकता। पितृत्तात्मक समाज में ऐसी सोच सिर्फ़ पुरुषों की ही नहीं अपितु

महिलाएं भी इस परंपरा को समृद्ध करती हैं वे सदियों से इसी सोच में जी रहीं है -"हमने भी उम्र भर यही कुछ सुना है। वही दलीलें और वही इनके दादा वाली हुज्जतें। जो इनके बाप-दादा करते रहे, वही तो यह भी करेंगे। इसे ढका ही रहने दो बहूजी।"(10) यही सीख बउआ की माँ ने उन्हें दी थी "मरदों के हिस्से में आए हैं महफिल-मुजरे, खेल-तमाषे और औरत को लगे हैं बाल-बच्चे, दिन-त्यौहार, पूजा-व्रत। रोने-धोने से कुछ बदलने वाला है"(11) यह सिर्फ एक परंपरा नहीं अपितु धर्मषास्त्र ने भी इसकी पुष्टि कर रखी है -" हमसे पूछो तो घर की बहू जिन्दगी भर या मर्द की सुनेगी या बेटों की। धर्मषास्त्र भी तो यही कहते हैं।"(12) पितृसत्तात्मक परंपरा सदियों से स्त्री का शोषण करती चली आयी। सभी प्रकार की नैतिकता, आचार-विचार स्त्री की बेड़ियों को मजबूत करते गए। किसी भी व्यक्ति को एक हद तक ही दबाया जा सकता है। जैसे ही उसमें अपनी अस्मिता का बोध जाग्रत होता है वैसे ही वह अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिए तनकर खड़ा हो जाता है। परिणाम की चिन्ता किए बगैर। यही बात महक बानो में दिखायी देती है। परंपरा की बेड़ियों में जकड़ी अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष और उस संघर्ष में अपनी जीत। इसी जीत की कहानी 'दिलोदानिश' है। महक जब खाँ साहब व उनकी माँ के साथ अजमेर जियारत करने चली गयी तो वकील साहब के पैरों तले चट्टान खिसक गयी। किसके साथ गयीं है ? किसकी इज़ाजत से? "कृपानारायण का अन्दर-बाहर तपने लगा -बिना हमसे पूछ-गाछे दिल्ली से बाहर चल दीं कहीं खाँ साहब ने पटा तो नहीं लिया।"(13) वकील साहब महक पर भरोसा नहीं कर पाते। उनकी पूरी कोशिश रही कि कुटुम्ब और महक को लेकर किसी किस्म के झमेले पैदा न हों। उनका मानना है कि रखेल को जिल्लत से कब तक बचाइएगा। मीठे की खातिर झूठा खा लिया जाता है मगर जूठे के लिए जूठन नहीं। फिर कभी-कभी महक के दूर होने के डर से उसे बहलाने वाली बातें भी करते हैं - कब मालूम था कि साथ-साथ रहने वाले एक-दूसरे में उग भी जाते हैं। यह सत्य होता तो महक के साथ उन्याया नहीं होता। अब उस दानिशमंदी से महक का यकीन उठ गया। कृष्णा सोबती के नारी पात्र विपरीत परिस्थितियों में भी दयनीय नहीं बनते अपितु वे उलझते हैं, संधर्ष करते हैं, टूटते हैं, और फिर पूरी शक्ति के साथ खड़े हो जाते हैं। महक के पास जीवंत उदाहरण उसकी माँ का है। वह जानती है कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? तभी तो " हम अम्मीवाला खेल न खेलेंगे। क्या-क्या न हुआ उनके साथ। अपने चेहरे पर पीठ होते ही नवाब साहब की, अम्मी पगला गयी थी। जिनके पीछे वह हलकान हुई वह थी मुहब्बत बाइज़्ज़त। कलाव-तों डेरेदारों के लिए कितना मुष्किल सफ़र। कितना कड़ा इम्तिहान। हो गई क़त्ल की सजा में जेल।"(14) वह अपनी अस्मिता-अस्तित्व की कीमत पर कोई समझौता नहीं करती और रिष्तेदारों के सामने लाती है। मासूमा, कुटुम्ब और वकील साहब की गोद ली गयी बेटी के रूप में तो समाज में स्वीकार्य हो सकती है लेकिन महक की बेटी के रूप में नहीं। वकील साहब बडप्पन का लवादा ओढ़कर मासूमा की शादी करते हैं किन्तु उसे महक अर्थात अपनी माँ से मिलने की इज़्ाजत नहीं, वह भी हमेषा के लिए। महक

ने जब देखा कि उसकी दोनों संतानें पिता के पद-चिह्नों पर चलकर पिता का साथ दे रहीं है और वह अकेली रह गयी। वह बिफर उठी। हमारी बेटी की शादी है और हमारी खुषी हमीं से छीनी जा रही है। तपती धूप और रेगिस्तान दीख रही है यही दो झाड़ियाँ और वह भी वकील साहब की हुई।

महक एक स्त्री होने के साथ-साथ माँ भी हैं मासूमा की खुषी के लिए उस शादी के लिए तैयार हो गयी "बेइख्तियार जी हुआ कि रो ले पर अपने पर काबू पाकर कहा - हम अपनी बेटी की माँ हैं। हर माँ को अपने बच्चों के लिए ममता होती है।"(15) महक को मासूमा से अलग कर दिया गया, एक स्त्री होने के नाते छुन्ना महक की पीड़ा को समझती है- "मासूमा को आज हल्दी चढ़ेगी। भाभी यहाँ क्या अकेली पड़ी रहोगी ? इस बेकार की बात में हमें कोई तुक नज़र नहीं आती। मासूमा आप दोनों की बेटी है, यह किसे मालूम नहीं।"(16) साहब के पास झूठी शान और खोखली मर्यादा के सिवा कुछ नहीं। हमारा बस चलता तो हम इस घर को हवेली में बदल देते पर बिरादरी की अपनी मर्यादा है। सारी बिरादरी हमारा तमाषा देखने को बैठी है, मानो कि महक से संबंध बनाने के लिए बिरादरी से इजाजत ली हो। महक का सवाल जो उन्हें पूरी तरह अन्दर से हिला देता है - "साहिब, हमारे बच्चों को इस बेदरेगी से छीन लेने का भला क्या हक है अपको।" इससे वकील साहब की नज़रो में महक इन्सानी दफ़ा की गुनहगार हो गयी। सहन शक्ति के सारे बाँध टूट गए वह समझ गयी अब कुछ होने वाला नहीं। उसने बड़े तंज से कहा -" हमारे जेवर तो हम तक पहुँचाइए। अब हम और इन्तज़ार न करेंगे।"(17) वकील साहब द्वारा किए गए शोषण को वह समझ गयी। अब उसमें एक नया आत्मविष्वास जागा और वह आत्म विष्वास था अपने व्यक्तित्व को स्थापित करने का। उसने चुनौती के अन्दाज में कहा- "हमारी माँ के जेवर हमें आज शाम तक मिल जाने चाहिए वकील साहिब! आप अम्मी के वकील रहे, अब हम आपकी मुबक्कितल की बेटी हैं जिनका उन पर पूरा हक है।"(18) उसी रात खाँ साहब की मौजूदगी में गहनों का हस्तांतरण हुआ। इस सफलता से वह आत्म गर्व से भर जाती है, अपनी असलियत और ताकत पहचानने की तृप्ति उसे महसूस होती है। वह जानती है कि हक मांगना अगर लड़ाई है तो दूसरों का हक मारना भी बेइंसाफी है। तभी तो इस बेइन्साफी को खत्म कर सबसे बड़ी सन्तुष्टि महसूस की "आज से पहले तो हम औरत भी नहीं थे। ओढ़नी थे, अँगिया थे, सलवार थे।............... जूती अपनी थी और पाँव किसी को सौंप रखे थे।।"(19) इसी संदर्भ में डॉ निर्मला जैन ने लिखा है " दिलोदानिश' मुख्य रूप से दूसरी औरत की जीत की, उसके सशक्तिकरण की दास्तान है। उसके संकल्प के, भीतरी ताकत के सामने समाज के रीति-रिवाज ओर उन्हें वहन करने को अपनी जिम्मेदारी समझनेवाले मर्दो की पराजय की, निस्तेज हो जाने की कहानी है।(20) देखा जाए तो स्त्री आज 'वस्तु' ही बनकर रह गयी है। अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए स्त्री-विमर्ष में चर्चाएं भी होती रही लेकिन एक वस्तु के रूप में परोसना तभी रूक सकता है जब स्त्री स्वयं जागरूक होकर पहल करे। उत्तर आधुनिक युग में स्त्री त्याग के साथ-साथ अपने अस्तित्व

और व्यक्तित्व की बात करने लगी हे जिसके परिणाम स्वरूप संघर्ष और द्वन्द्व अनिवार्य रूप से समाज में उभर रहा है। 'दिलो दानिश' में वह बहुत ही निर्णायक और महत्वपूर्ण क्षण है जब महक अपनी बेटी की शादी में उपस्थित होकर अपनी माँ के गहने पुत्री को भेंट करती है साथ ही पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने समाधियों के सामने आती है। छुन्ना को ऐसा लगा बानो भाभी ने चोला बदल लिया है।" .... और "आज कहाँ से निकाल लायी यह हिम्मत।" यहाँ सिर्फ अपने अस्तित्व को साबित करना था कि वह सिर्फ वकील साहब के हाथों नाचने वाली कठपुतली नहीं है। "उस मौके पर महक भाभी के खड़े होने का अन्दाज बात करने में रूआब उनका खास अपना ही था। खाँ साहिब का इस अदा से कोई ताल्लुक न था। लगता था वह जेवर पहनते ही उन पर उनका खानदानी स्वरूप उतर आया था, ऐसे जैसे दुनियाँ को पछाड़ कर खड़ी हो गयी हों।(21) और वकील साहिब के शब्दों में "ऐसा पछाड़ा कि जमाने के सामने हमारी पीठ लगा दी।"

जिन लोगों के सामने आने पर उसके लिए पूर्णतः प्रतिबंध लगा था और अपने बच्चों से माँ होने का अधिकार छीन लिया गया था उन्हीं के सामने अपने अधिकार का प्रयोग किया। दस्तूर के मुताबिक हमें तो आज बरती रहना है बेटे। मासूमा की माँ हैं हम। .... पूरी बिरादरी महक के इस बदलाव से हैरान परेषान थी। इसी संदर्भ में डाॅ. ब्रिजिट पाॅल लिखती है-" महक बानो ने अपनी ताकत और शक्ति को पहचान लिया और बिरादरी की सभी मान्यताओं को पछाड़ कर जीत लिया।" यह बदलाव किसी के कहने या दबाव से पैदा नहीं होता अपितु अन्दर से उत्पन्न होता है। स्त्री के लिए यह जरूरी है कि अपने अन्दर की शक्ति को सही क्षण, सही मौके पर पहचाने। यह उसके व्यक्तित्व विकास की सीढ़ी है। कितना भी कुछ हो लेकिन चेहरे पर न गुस्सा-गिला, न माथे पर षिकन-तेवर। ओठों पर एक झीनी सी उदासी। आखिर में महक अपने वजूद को स्थापित कर वकील साहिब से बड़ी ही शालीनता से अलग हो गयी। और एक सामान्य स्त्री को चाहिए भी क्या ? वह तो सिर्फ स्वयं को साबित करना चाहती है।

सन्दर्भ

१- दिलो दानिश, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण 2006 पृ0 9
२- पृ0 14
३- वही पृ0 73
४- वही पृ0 74
5- वही पृ0 77
6- वही पृ0 92
7- वही पृ0
8- वही पृ0 96
९- वही पृ0 96
१०- वही पृ0 97
११- वही पृ0 98
१२- वही पृ0
१३- वही पृ0 119
१४- वही पृ0 162
१५- वही पृ0 197
१६- वही पृ0 201
१७- वही पृ0 203
१८ -वही पृ0 204
१९- वही पृ0 208
२०- कथा समय मे तीन हमसफर -डा. निर्मला जैन

पृ0 130

२१- दिलो दानिश, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण

2006 पृ0 220